जगदीश भाई

भ्राता जगदीश चन्द्र जी का जन्म 10 दिसंबर, 1929 को ऋषि-मुनियों के लिए विख्यात शहर मुलतान (वर्तमान समय पाकिस्तान में) की पवित्र भूमि पर हुआ। आपकी आध्यात्मिकता में अनुपम रुचि थी तथा इसी अभिरुचि को तृप्त करने के लिए आपने भारतीय दर्शन, वैदिक संस्कृति एवं विश्व के विभिन्न धर्मों का गहन अध्ययन किया। जब शुरू में दादियों ने दिल्ली में सेवायें प्रारंभ की, उस समय आपने दिल्ली कमलानगर में ज्ञान लिया। आप लौकिक में प्रोफेसर थे, आपकी बुद्धि बहुत दूरांदेशी और प्रवीण थी। आपने कोर्स करते ही, गुप्त रूप में आये हुए भगवान को पहचान लिया और स्वयं को बेहद सेवाओं में समर्पित कर दिया। बाबा आपको संजय, गणेश आदि उपनामों से पुकारते थे। आपकी बुद्धि के लिए कहते कि 7 फुट लंबी बुद्धि है। आपने राजयोग जैसी जटिल व गुह्य विद्या पर शोध कार्य किया तथा उसकी व्याख्या अत्यंत सरल, सुबोध एवं सुरुचिपूर्ण शब्दों में की। आपने विद्यालय का पूरा साहित्य तैयार किया। राजयोग, मानवीय मूल्यों, आध्यात्मिकता एवं समसामयिक विषयों पर 200 से भी अधिक हिन्दी, अंग्रेजी और उर्दू भाषाओं में पुस्तकें लिखी। आप ज्ञानामृत, वर्ल्ड रिन्युअल तथा प्योरिटी के प्रधान संपादक रहे और 'भारतीय एडीटर्स गिल्ड' के सदस्य भी थे। आप सेवाओं के आदि रत्न थे। आपका यज्ञ में अग्रणीय स्थान रहा। आप मुख्य प्रवक्ता के रूप में रहे। आपने सेवा की अनेकानेक नई योजनायें तैयार की और उन्हें प्रैक्टिकल स्वरूप दिया। आपने विभिन्न वर्गों की सेवाओं हेतु अनेक विंग्स बनाई और उनका सुचारु रूप से संचालन किया। आप यज्ञ सेवाओं की नींव थे। दिल्ली शक्तिनगर सेवाकेन्द्र पर रहकर आप विश्व सेवा के निमित्त बने। रशिया में आपने सेवाओं की नींव डाली जहाँ आज हजारों बाबा के बच्चे ज्ञान-योग की शिक्षा ले रहे हैं। आपका व्यक्तित्व एवं कृतित्व सब कुछ जैसे संपूर्ण मानवता के लिए ही था। अक्सर कहा जाता है कि आप सच्चे दधीचि थे। आपने 12 मई, 2001 को अपने पार्थिव शरीर का त्याग कर संपूर्ण स्थिति को प्राप्त किया।

आदरणीय **भ्राता जगदीश जी** को बाल्यकाल से ही प्रभु-मिलन की गहन प्यास थी। माउंट आबू में एक कार्यक्रम के दौरान बाल्यकाल के अनुभवों को सुनाते हुए आपने कहा था कि "जब मैं छोटा था तो मेरे मन में उत्कट इच्छा थी कि मुझे परमात्मा से मिलना है, आत्मा के स्वरूप में स्थित होना है और आत्म-अनुभूति करनी है। मैंने निश्चित किया था कि मेरे जीवन का यही परम लक्ष्य है, इसे किये बिना मैं नहीं टलूँगा, मुझे और कुछ भी नहीं चाहिए। तो उस भावना से जो भी कोई सत्संग या धार्मिक सम्मेलन होता था, मैं उसमें शामिल होता था। कुछ शास्त्रार्थों में भी शामिल होता रहा। उस समय के कई महात्माओं से, साधु-संतों से, योगियों से भी मिलता रहा ताकि प्रभु मिलन का सच्चा मार्ग मिल जाए।"

सन् 1952 में आपने महसूस किया कि प्रभु मिलन हेतु और इंतजार नहीं किया जा सकता और आपको लगा कि ईश्वरानुभूति के बिना तो जीवन मानो निरर्थक ही हो गया है। जीवन के इसी मोड़ पर आप प्रजापिता ब्रह्माकुमारी ईश्वरीय विश्व विद्यालय के संपर्क में आये और इसके संस्थापक प्रजापिता ब्रह्मा के पवित्रता व सादगीयुक्त जीवन से विशेष रूप से प्रभावित हुए। इस ईश्वरीय विश्व विद्यालय द्वारा सिखाई जाने वाली सहज राजयोग की विधि तथा ईश्वरीय ज्ञान से आपको नई रोशनी मिली। यहाँ आपको गहन आध्यात्मिक अनुभव हुए और आपने लौकिक नौकरी छोड़ दी तथा मानव सेवा हेतु अपना जीवन इस संस्था को समर्पित कर दिया। आप इस संस्था में विभिन्न महत्त्वपूर्ण पदों पर कार्यरत रहे। आपने संस्था के प्रमुख प्रवक्ता के रूप में अनेक राष्ट्रीय व अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलनों, परिचर्चाओं व आध्यात्मिक मेलों इत्यादि का आयोजन किया। जन-जन को आध्यात्मिक संदेश देने हेतु भारत के 6,000 एवं विश्व के 80 देशों के 300 सेवाकेन्द्रों की स्थापना एवं प्रगति में विशेष योगदान दिया। आप संस्था की केन्द्रीय समिति के जनरल सेक्रेटरी और प्रजापिता ब्रह्माकुमारी ईश्वरीय विश्व विद्यालय की संबंधित संस्थाओं के उपाध्यक्ष भी थे।

विश्व भर में इस ईश्वरीय ज्ञान का प्रचार-प्रसार करने हेतु आपने 50 देशों की यात्रा की और अपने दिव्य अनुभवों का अनेकों के साथ आदान-प्रदान किया। सभी देशों में समाचार-पत्रों, रेडियो, दूरदर्शन आदि के द्वारा आपके साक्षात्कारों व कार्यक्रमों का प्रसार हुआ। आपको विश्व के अति विशिष्ट व्यक्तियों लार्ड माउण्टबेटन, दलाई लामा, पोप, अर्नाल्ड टायनबी, संयुक्त राष्ट्र संघ के उच्च पदाधिकारियों, अनेक देशों के राष्ट्रपतियों व प्रधानमंत्रियों आदि से भेंट कर उन्हें ईश्वरीय संदेश देने व उनके साथ आध्यात्मिक चर्चा करने का सुअवसर भी प्राप्त हुआ। प्रजापिता ब्रह्माकुमारी ईश्वरीय विश्व विद्यालय की प्रगति में आपका विशेष योगदान रहा और आपके विशेष प्रयासों के फलस्वरूप यह संस्था संयुक्त राष्ट्र के साथ अंतर्राष्ट्रीय गैर सरकारी संस्थान के रूप में सम्बद्ध हुई व विश्व भर में फैली। बीमारी के दौरान भी अनेक सेवा योजनाओं का सफल संचालन कर आपने अपनी देहातीत स्थिति का प्रमाण प्रस्तुत किया। आप यही कहते रहे, "मेरा शरीर बीमार है, मैं (आत्मा) नहीं।' दैवी-संस्कृति के गूढ़ रहस्यों के ज्ञाता, नव विश्व निर्माण के आधारमूर्त, सबके उद्धारमूर्त, निस्वार्थ स्नेही, निस्पृह, आप्तकाम भ्राता जगदीश जी को सर्व ब्राह्मण कुल भूषणों की तरफ से शत-शत स्नेह-सुमन अर्पण और नमन। आज शारीरिक रूप से हमारे मध्य न होकर भी आपकी बाप समान धारणाएँ और प्रेरणाएँ, आपकी अमूल्य लेखनी के उद्‌गार सदा हमें ज्ञान-प्रकाश देते रहेंगे। आपके प्रति और बापदादा के प्रति हमारे स्नेह का सही अर्थों में यही प्रमाण और प्रकटीकरण होगा कि हम आपकी आश "बाबा की प्रत्यक्षता' को पूर्ण करें। महान विभूति, ब्राह्मण कुल के शृंगार, विजयी-रत्न भ्राता जगदीश जी को बार-बार हार्दिक प्रेम भावांजलि तथा श्रद्धा-सुमन अर्पण!

******

जगदीश भाई जी के त्यागी, तपस्वी और सेवामय जीवन की लगभग 40 वर्षों तक साक्षी रही बहन चक्रधारी उनके बारे में इस प्रकार बताती हैं-

बचपन से ही आपके मन में वैराग्य की भावना थी और कहते थे कि मुझे ऋषिकेश में जाकर ही वास करना है। एक बार ऋषिकेश में स्थान भी देखने गए कि अगर वातावरण अच्छा हो तो कमरा लेकर वहीं रहकर साधना की जाये। जगदीश भाई का ऑफिशियल नाम तो जगदीश चंद्र ही था। घर में उनका नाम ऋषिकेश था और आलमाइटी बाबा ने उन्हें जो अव्यक्ति नाम दिया, वह था, 'मनोहर फूल'। इसके अलावा बाबा ने उन्हें 'गणेश' और 'संजय' (दिव्यदृष्टि धारी) नाम भी दिये थे।

ईश्वरीय ज्ञान सीखने में कठिनाइयों का सामना

एक बार बहनें थियोसॉफिकल सोसायटी में भाषण करने के लिए गई थीं, जगदीश भाई भी भाषण सुन रहे थे। जब बहनें प्रोग्राम पूरा करके बाहर आईं तो आप भी ये जानने के लिए कि ये बहनें कहाँ रहती हैं, उनके पीछे-पीछे आये। आपने उनसे उनके सेवास्थान का पता पूछा और आने का समय पूछा। बहनों ने सुबह चार बजे का समय दिया। जगदीश भाई ने सोचा कि अब मैं अपने रहने के स्थान पर जाऊँ और सुबह ठीक चार बजे बहनों से ज्ञान लेने के लिए पहुँचुँ, इतना समय तो नहीं है इसलिए वे वहीं एक पेड़ के नीचे साइकिल खड़ी करके समय व्यतीत करने लगे और सुबह चार बजे सेवाकेन्द्र पर पहुँच गये। उस समय बहनें दिल्ली मलकागंज में छोटे-से कमरे में रहती थीं। वहीं से आपने ज्ञान लिया। आपको ईश्वरीय ज्ञान की इतनी लगन थी कि आप कई बार तो सुबह चार बजे से पहले ही पहुँच जाते थे। शाम को भी क्लास करते थे। क्लास करके अपने निवास (सोनीपत में एक हॉस्टल) पहुँचने में इन्हें रात के 12 बज जाते थे तब तक हॉस्टल के दरवाजे बंद हो जाते थे। भाई साहब ने सुनाया था, एक बार मैं खिड़की से कूदकर अपने कमरे में जा रहा था, किसी ने खिड़की के अंदर मटका रख दिया था, मुझे मालूम नहीं था कि यहाँ मटका रखा हुआ है। ज्यों ही मैं कूदा, मटका गिरा, जोर से आवाज आई, सारे लोग खड़े हो गए और कहने लगे, क्या हो गया, क्या हो गया। मैं भी उनके साथ शोर मचाने लगा कि क्या हो गया.. ताकि यह ना पता चले कि मैं लेट आया हूँ। क्या हुआ..क्या हुआ..चोर आया..ऐसा शोर मचाकर सब सो गये। फिर, रात को दो-अढाई बजे उठकर, नहा-धोकर मैं फिर खिड़की के रास्ते निकल गया ताकि सुबह की क्लास कर सकूँ। किसी को पता न पड़े इसलिए पीछे की खिड़की से कूदकर बाहर जाना पड़ता था।

एक बार रात के अंधेरे में एक शराबी ने पकड़कर पिटाई भी कर दी कि यह कौन है जो रोज आता है। फिर भी ज्ञान सुनना छोड़ा नहीं। आश्रम तक पहुँचने का रास्ता बड़ा ऊबढ़खाबढ़ था, चोर लूट लेते थे इसलिए घड़ी पहनकर नहीं आते थे, टाइम का पता नहीं पड़ता था। अगर टाइम से पहले पहुँचकर दरवाजा खटखटाते थे तो बहनें दरवाजा भी नहीं खोलती थीं। एक

बार ऐसा ही हुआ, बहनों ने कहा, इतना जल्दी क्यों आ गये हो, अभी दरवाजा नहीं खुलेगा तो पान वाले से जाकर समय पूछा। पता पड़ा कि अभी तो चार बजे हैं। भाई साहब का जीवन सादा होने के कारण बहनें समझती थी कि साधारण-सा है लेकिन कई बार साधारण दिखने वाला भी अंदर से कितना महान हो सकता है, यह भी सत्य है।

बाबा का डायरेक्शन सेवाकेन्द्र प्रति

बाबा ने कहा था, सेवाकेन्द्र ऐसे स्थान पर खोलो जो दिल्ली यूनिवर्सिटी के सामने हो, जिसकी दीवार किसी गृहस्थी के घर की दीवार से ना मिले। सचमुच ऐसा एक भवन मिला जो बाबा की कंडीशन के अनुसार था। वह था, प्रथम सेवाकेन्द्र जहाँ आप समर्पित रूप से रहे, कमला नगर दिल्ली का। जगदीश भाई जी हमें सुनाया करते थे, उस समय सेवाकेन्द्र पर दो ही कमरे थे तथा एक छोटा-सा स्टोर था। एक कमरे में बहनें रहती थी, किचन बहुत छोटी थी। भाई साहब का जो कमरा था, उसी में क्लास होती थी। लिखने आदि का सारा काम वे वहीं करते थे। अलमारियाँ दीवार में ही पत्थर की स्लैब डालकर बनाई गई थी जिनका कोई दरवाजा नहीं होता था। जैसे ही हवा आती थी, सारे कागज उड़ने शुरू हो जाते थे। वे बताते थे कि मेरा काफी समय कागज़ समेटने में ही लग जाता था।

भगवान मिला, इससे बढ़कर और क्या चाहिए

मधुबन से नित्य बाबा किसी न किसी बहन को वहाँ भेजते ही रहते थे। भाई साहब यह भी सुनाते थे कि एक ही लेट्रिन-बाथरूम था। स्नान करने वाले ज्यादा थे इसलिए हम लोटा लेकर दूर जमुना जी के घाट पर चले जाते थे। वहाँ पब्लिक लेट्रिन बनी हुई थी। वहीं स्नान-पानी करके फिर घर आते थे। लेकिन कभी भी मन में यह नहीं आया कि यह क्या, यहाँ तो स्नान के लिए भी जगह नहीं मिलती। अरे, भगवान मिल गया, इससे बढ़कर और क्या चीज़ चाहिए! भगवान मिल गया, स्नान का प्रबंध नहीं मिला, खटिया नहीं मिली तो क्या बड़ी बात है! इस प्रकार भाई साहब ने शुरू से जीवन बड़ा त्याग का जीया।

ईश्वरीय सेवा की लगन

सेवाकेन्द्र के पास एक आर्यसमाजी स्कूल था। भाई साहब पहले आर्यसमाज से संबंध रखते थे। एक बार उन्होंने उनसे बातचीत करके कार्यक्रम के लिए उनका हॉल ले लिया और बहनों का भाषण रख दिया। इतने पैसे नहीं होते थे कि पर्चे छपवाएं और बाँटे इसलिए स्वयं ही दरियाँ बिछाई और बाहर सड़क पर खड़े हो गए। फिर पकड़-पकड़ कर लोगों को लाने लगे कि 'आओ, देवियों का भाषण सुनो, आबू पर्वत से उतरी हैं ये देवियाँ।' उनका लक्ष्य होता था कि देवियों के आने से पहले हॉल भर जाए और सबको बहनों द्वारा प्यारे बाबा का संदेश मिल जाए।

मुझे एक शिक्षा भाई साहब ने दी कि कोई भी ज्ञान सीखने आए तो उससे प्रभावित नहीं होना कि यह तो बहुत अच्छा है लेकिन किसी से नफरत भी नहीं करना। यह शिक्षा हमको बहुत काम आई।

सुविधायें कम, कार्य अति महान

सेन्टर पर कुर्सी और मेज नहीं थे, क्लासरूम में ही बैठकर लिखते रहते थे इसलिए कंधे निकल आए और कमर झुक गई। पेट भी थोड़ा बड़ा होता गया। उनके कमरे की एक खटिया ही उनका सब कुछ होती थी। उसी पर बैठकर खाना भी है, लिखना भी है और सोना भी है। एक छोटा-सा स्टूल होता था जिस पर उनके सारे पेन आदि रखे होते थे। पेट पर ही तकिया रखकर, उस पर तख्ती रख लिखते रहते थे। कई लोग कहते थे, जो यहाँ के संपादक हैं, उनका ऑफिस दिखाओ, हम उनके ऑफिस में उनसे मिलना चाहते हैं। ऑफिस हो तो दिखायें, इसलिए हम आने वालों को नीचे ही बिठा लेते थे और कहते थे कि आप बैठिए, हम भाई साहब को यहीं बुला लेते हैं, वो आपसे यहीं आकर मिल लेंगे। वे किसी मिलने वाले को अपने कमरे में नहीं बुलाते थे।

अति साधारण पहनावे में भी गुणों की झलक से सफलता

जब जगदीश भाई यज्ञ में आये तो बेगरी पार्ट चल रहा था। सिंध-हैदराबाद से आये हुए पुराने कपड़े कुछ स्टॉक में पड़े रहते थे, उनमें से ही इनको कोई पैजामा-कुर्ता मिल जाता था, उसी से काम चलाते थे। कहते थे, कभी भी कोई कपड़ा फिट नहीं आता था। कभी किसी पैजामे की टांग ऊपर चढ़ जाती तो कोई नीचे लटकता रहता था। ऐसे ही कपड़े पहनकर बड़े-बड़े लोगों से मिलने चले जाते थे लेकिन उनका बातचीत करने का तरीका ऐसा था कि किसी से भी अप्वाइंटमेंट ले आना उनके लिए बहुत सरल था। दृढ़ता इतनी थी, कहते थे, कोई काम करना है तो करना ही है और युक्ति से अपना काम कर ही लेते थे।

उन दिनों कार तो होती नहीं थी, बसों में ही आना-जाना होता था। रिक्शा के लिए भी पैसे खर्च नहीं कर सकते थे। भाई साहब प्रोग्राम देते, चलो, आज किसी से मिलने जाना है। मिलने का समय निश्चित होता था पर बस मिलना तो निश्चित नहीं होता था। दादी गुलजार भी साथ होती थी। हम सड़क पर पहुँचते थे, यदि सामने से कोई बस आ रही होती थी, तो कहते थे, गुलजार दादी, आप जल्दी-जल्दी बस के आगे खड़े हो जाओ और हाथ दो। सड़क के बीचों-बीच खड़े होकर हम हाथ देते थे। गुलजार दादी साड़ी उठाए जल्दी-जल्दी दौड़ती थी और जगदीश भाई कहते थे कि आप इस तरह बीचों-बीच खड़े हो जाओ जो बस आगे निकल ही न पाए। जैसे ही बस खड़ी होती थी, भाई साहब गेट पर खड़े होकर कहते थे, आइये बहन जी, बहनों को चढ़ाकर खुद भी चढ़ जाते थे क्योंकि टाइम पर पहुँचना होता था।

कड़ी परिस्थितियों में युक्ति से मुक्ति

एक बार बनारस में एक कांफ्रेंस थी, उसका निमंत्रण मिला, सारा दिन उसका मैटेरियल तैयार किया और प्रेस में छपवाया। उस समय प्रथम और द्वितीय श्रेणी की तो बात थी ही नहीं, तृतीय श्रेणी में ही सफर करते थे। ठंडी बहुत थी, अपने साथ एक रजाई ले गये थे, उस रजाई को लपेटकर ऊपर की बर्थ पर सो गये। दिन-भर काम करने के कारण थकान इतनी हो गई थी कि गहरी नींद में करवट ली और नीचे गिर गये। नीचे बैठे लोग चाय पी रहे थे, उन पर गिरे तो उनके कप-प्लेट भी टूट गये। भाई साहब ने बताया कि मेरे को चोट तो नहीं आई क्योंकि रजाई में लिपटा हुआ था लेकिन वो लोग चिल्लाने लगे कि हमारी चाय गिरा दी, प्लेटें तोड़ दी, बाबूजी पैसे निकालो। बाबू जी के पास तो पैसा एक भी नहीं। बहनों ने टिकट बनवाकर दे दी थी और एक रुपया दिया था, रिक्शा से आश्रम तक जाने का। पैसे कहाँ से दें, तो शोर मचाया कि मुझे बहुत चोट लगी है। यह सुनकर उन्हें तरस आ गया ओर बात खत्म हो गई। चोट लगी नहीं थी पर पैसे थे ही नहीं तो यह सब कहना पड़ा।

ट्रेन से उतरकर एक रिक्शा वाले से पूछताछ की, वह पैसे ज्यादा मांग रहा था। तो रजाई को लपेटकर बगल में दबाया, थैला उठाया और पैदल ही चल पड़े ताकि कुछ आगे जाकर रिक्शा ले लेंगे, सस्ता मिलेगा। आगे जाकर ज्यों ही रिक्शा में बैठे, पैजामा घुटनों से फट गया। बगल में रजाई, एक हाथ में थैला, दूसरे हाथ से पैजामा पकड़ लिया ऐसी स्थिति में सेन्टर पहुँचे। भाई साहब हमेशा सूई-धागा साथ में रखते थे क्योंकि कभी कोई कपड़ा फट जाता था, कभी कोई, तो सफर में ही सिलाई कर लेते थे।

बहनों के प्रति सदा श्रद्धावान

कई बार बहनें दो आने देकर भाई साहब को बाहर भेजती थी और पर्चे छपवाने तथा खरीदारी के कार्य करने को कहती थी। भाई साहब किराया बचाने के लक्ष्य से पैदल जाते, पैदल आते और किसी को ज्ञान सुनाकर, किसी से स्नेहपूर्वक कहकर उन दो आनों को भी बचा लेते थे। यज्ञ की बड़ी बहनों के पास भले ही दुनियावी ज्ञान नहीं था पर उन्हें देखकर लगता था कि ये देवियाँ हैं इसलिए भाई साहब कोई भी सेवा करने के लिए हरदम तैयार रहते थे। जब प्रोग्राम होते थे तो वे हमेशा मंच सचिव बनते थे ताकि भाषण में कोई बात छूट जाये तो उसे स्पष्टकर सकें।

बाबा ने भाई साहब को अधिकार दिया था कि बच्चे, तुम भक्ति आदि की या अन्य प्रकार की कोई भी किताब पढ़ सकते हो, फिर उसकी ईश्वरीय ज्ञान से तुलना कर सत्यता को लोगों के सामने रख सकते हो। कई बार हम भाई साहब को कहते थे कि आपके पास इतनी किताबें पड़ी हैं, कुछ हमको भी पढ़ने के लिए दे दो, तो कहते थे, यह ईश्वर की आज्ञा नहीं है, जो आपके काम की चीज होगी, वो आपको मैगजीन द्वारा या साहित्य द्वारा मिल जायेगी, इन्हें पढ़कर आप अपना टाइम खराब क्यों करती हो।

माताओं-बहनों से जिगरी स्नेह

कई बार सुनाते थे कि यज्ञ के कार्यों अर्थ भी कई प्रकार के कष्ट सहन करने पड़े। एक बार एक बहन थी, ज्ञान में चली तो पति पवित्रता के लिए झगड़ा करता था। फिर केस चला। उस बहन की रक्षा के लिए भाई साहब को मार भी खानी पड़ी। लेकिन कहते थे, इन माताओं-बहनों को बचाने के लिए ब्रह्मा बाबा ने कितना सहन किया, हमने चार थप्पड़ खा लिए तो क्या हुआ। माताओं-बहनों के लिए बहुत स्नेह था। भाई साहब हर कार्य में बहनों को आगे रखते थे। किसी से मिलना हो, कार्यक्रम लेना हो तो बहनों को साथ जरूर लेते थे क्योंकि बाबा ने बहनों को आगे रखा है। हमें तो मूर्ति बनाकर साथ ले जाते थे। अधिकारी को कहते थे, बहन जी, आपके लिए टोली लाई हैं और हमें कहते थे, आप योगयुक्त होकर दृष्टि देते रहना, बात मैं खुद कर लूँगा।

विघ्न-विनाशक

उनके कामों में विघ्न बहुत आते थे। हम कहते थे, आपका नाम इसलिए बाबा ने विघ्नविनाशक रखा है, विघ्न आयेंगे, फिर आपको उन्हें खत्म करना होगा। कितना भी बड़ा विघ्न आये, बड़ी से बड़ी बात आये पर उनके मन में यह नहीं आता था कि बाबा की सेवा नहीं होगी। कई बार ऐसा भी होता था, मान लो गाड़ी में हमें रिजर्वेशन नहीं मिली तो कहते थे, जब गाड़ी चलने लगे तो फौरन चढ़ जाना। मैं कहती थी, टी.सी. देख रहा है आँख टेढी करके, मैं बिल्कुल नहीं चढूँगी तो कहते थे, मैं कहता हूँ, चढ़ जाना। हम चढ़ जाते थे। टी.सी. देखता रहता था फिर उस टी.सी. को पता नहीं कान में क्या फूंक मारते थे अर्थात् समझाते थे जो वह कहता था, चलो, एडजस्ट होकर बैठ जाओ।

बहनों को सदा चैतन्य देवियाँ समझा

दिल्ली का अंबेडकर स्टेडियम खेलने का स्थान है, धार्मिक प्रोग्राम वहाँ न हुए और न हो सकते थे लेकिन भाई साहब ने अंबेडकर स्टेडियम में प्रोग्राम फाइनल कर दिया। शाम को प्रोग्राम होना है और सुबह कुश्ती के लिए आये हुए पहलवानों ने कह दिया कि हम तुम्हारी लगाई हुए स्टेज को तोड़ देंगे। भाई साहब ने कहा, तुम तोड़ो, मैं तुम्हारा सामना करने को तैयार हूँ, फिर उनके साथ दोस्ती भी कर ली। थोड़ी देर में उनके गले में हाथ डालकर चलने लगे। पता नहीं, क्या कहते थे कि लोग ठंडे हो जाते थे। मैं पूछती थी, भाई साहब, आपने उनको कहा क्या, कोई तो बात कही होगी? तो कहते थे, मैंने उनको कहा कि देखो, जो पहलवान होते हैं, वे देवियों के पुजारी होते हैं और यह देवियों का काम है। आपके प्ले ग्राउंड में यह कार्यक्रम मैं भी नहीं करना चाहता क्योंकि मैं भी आपका भाई हूँ लेकिन अब तो पान का बीड़ा उठा लिया और देवियों का काम जहाँ हो, उसे अगर बीच में छोड़ दिया जाये तो विघ्न बहुत

आते हैं, तो आपके स्टेडियम में विघ्न बहुत आयेंगे। आप पहलवान लोग देवियों के उपासक हो। मैं नहीं चाहता कि आगे चलकर आपको विघ्न आयें। आप जहाँ जाओ, आपकी जीत होनी चाहिए, नहीं तो आपकी जीत में कमी आ जायेगी इसलिए मैं आपको प्यार से बता रहा हूँ। आपके एक बार कहने से ही मैं स्टेज को उठा देता पर मैं मजबूर हूँ आपके कारण, बहनों के कारण नहीं। इन बहनों को आप नहीं पहचानते, मैं पहचानता हूँ। ये देवियाँ हैं और देवियों के काम में विघ्न नहीं आने चाहिएँ इसलिए आप मुझे सहयोग दो। जो और लोग आके खड़े हुए हैं, उन्हें भी कहो कि शान्ति का सहयोग दें। जो हो रहा है, होने दो। इस प्रकार उन लोगों को अपने में मिला लेते थे। अगर कुछ लोग फिर भी विरोधी रह जाते थे तो उनकी तरफ से कहते थे, हमारे अपने ही घर में फूट हो तो हम क्या करें। इस प्रकार सेवा हो जाती थी।

विघ्नों के पूर्व आभास से विघ्नजीत

एक बार रशियन लोगों को आबू जाना था। रिजर्वेशन हुई पड़ी थी। बस द्वारा रेलवे स्टेशन जाना था। इसी बीच ट्रैफिक की हड़ताल होने का समाचार आया। भाई साहब ने कहा, आप ट्रैफिक पुलिस में एक एप्लीकेशन लिखकर दे दो और बस की परमिशन ले लो। हमने परमिशन लेने के लिए भाइयों को भेजा। उन्होंने कहा कि दीदी, वो कहते हैं, वोट क्लब में यह हड़ताल होगी, आम एरिया में नहीं होगी इसलिए आप लोगों को परमिशन की कोई जरूरत नहीं है। मैंने कहा, ठीक है, मैं भाई साहब को बता देती हूँ। मैंने बताया तो कहने लगे, आप समझते नहीं हो, भाइयों को कहो, परमिशन लेकर ही आना है। मैंने कहा, जब हड़ताल होनी ही नहीं है तो फिर परमिशन लेने की क्या जरूरत है और परमिशन देते भी नहीं हैं। फिर स्वयं फोन करके कहा, छोटे ऑफिसर को छोड़ दो, बड़े ऑफिसर के पास जाओ और कहो, हमें लिखित में दे दो कि हमारी बस निकल सकती है। बड़े साहब ने कहा, परमिशन की कोई आवश्यकता नहीं है, हड़ताल दूसरे क्षेत्र में होगी। आपको तो पुरानी दिल्ली जाना है, आप भले जाना। लेकिन भाई साहब ने कहा, अगर जरूरत नहीं है तो भी परमिशन लेटर देने में जाता क्या है। इस प्रकार, बहुत पुरुषार्थ के बाद, बड़े साहब ने स्टेम्प लगाकर लैटर लिख दिया। अगले ही दिन पुलिस ने हर चौराहे को ट्रैफिक के लिए बंद घोषित कर दिया। किसी भी प्रकार का ट्रैफिक वहाँ से निकल नहीं सकता था। हमारे पास तो परमिशन थी और वो भी बड़े ऑफिसर की। किसी ने हमारी बस को नहीं रोका। सारी सड़क पर हमारी ही बस घूम रही थी और इस प्रकार सभी विदेशी भाई-बहनें ठीक समय पर रेलवे स्टेशन पर पहुँच गये। भाई साहब को बाबा ने 'गणेश' टाइटल दिया था तो उनकी बुद्धि इतनी तेज थी जो आने वाले विघ्नों को पहले से ही जान जाती थी। वे बहुत ही दूरंदेशी थे।

नाम, मान, शान, दिखावे से मुक्त

यज्ञ सेवा के कार्य करते कई बार बहुत मेहनत करते थे, अधिकारीगण किसी बात की स्वीकृति

देने से ना भी कर देते थे, तो भी लास्ट घड़ी तक प्रयास करते रहते थे। मैं कहती थी, भाई साहब छोड़ दीजिए, इनका कानून नहीं है, तो कहते थे, भगवान के काम में ला (कानून) बीच में नहीं होता है। हम तो फिर शांत हो जाते थे। फिर हम देखते थे, स्वीकृति लेकर ही रहते थे। किसी को पता भी नहीं पड़ता था कि यह सब हो कैसे गया। कभी शो नहीं करते थे कि मैंने यह किया। कई बहन-भाई अपनी-अपनी सेवा का वर्णन उनके आगे करते थे तो सुनते थे पर कभी यह नहीं कहते थे, मैं भी कर रहा हूँ। कहते थे, बाबा की सेवा की है, बाबा ने तो जान ही लिया है।

बेहद सेवा में सदा अथक

एक बार प्रगति मैदान में मेला लगने वाला था, अधिकारियों ने केवल 8 छोटे स्टाल देने ही स्वीकृत किए पर भाई साहब ने नम्रतापूर्वक निवेदन किया प्रगति मैदान में तो सारे विश्व के लोग आयेंगे, कितनों का आशीर्वाद आप सबको मिलने वाला है और इस स्थान पर बहुत बड़ी सेवा होने वाली है, इसका अहसास शायद आपको नहीं है, आप भले ही छोटे स्टाल दो, पर दो पंद्रह ही। उन दिनों उनकी तबीयत बिल्कुल अच्छी नहीं थी फिर भी अथक होकर यह कार्य किया। किसी को पता नहीं पड़ता था कि जगदीश भाई इतने चक्कर क्यों काट रहे हैं। स्वीकृति मिल जाने के बाद भी खड़े होकर कार्य को करवाते थे। ना खाना खाते थे, ना पानी पीते थे, मान लो हम थोड़ा सूप लेके जाते थे, देते थे, तो कहते थे, ये पीछे की बातें हैं। हमको कहते थे, जाओ, खाओ। बहनों का बहुत ध्यान रखते थे। कई कामों में भाग-दौड़ और विघ्न बहुत होते थे, पर सब बातें सहन करते थे।

दृढ़ता से सफलता

दिल्ली में हमने मकान का नक्शा बनाया क्या था और वह बन क्या गया। मैं कहती थी, देखो, अखबार में आ गया है कि जो नक्शे के अनुकूल नहीं होगा, उसे तोड़ देंगे, मकान तो अब टूट जायेगा। उनका दिल बहुत बड़ा था, कहते थे, मैं सब कुछ आगा-पीछा देखकर करता हूँ, हम बाबा की सेवा कर रहे हैं, अपने सुख के लिए नहीं बना रहे, भगवान की छत्रछाया है, उसको नहीं मालूम है कि मेरे बच्चे किसलिए कर रहे हैं, आप नेगेटिव मत सोचो। इस प्रकार, जिस काम को उठा लेते थे, उसको पूरा करके ही छोड़ते थे।

हर प्रकार की बचत

मैं कई बार कहती थी कि आप अपना वारिस तो किसी को बनाओ तो सुनकर शांत हो जाते थे, कभी यह नहीं कहते थे कि फलां व्यक्ति मेरे पीछे देख लेगा। कहते थे, बाबा का कार्य है। उनको शुरू से यह संस्कार था कि काम भले ज्यादा हो पर करने वाले ढेर नहीं होने चाहिएँ।

कई बार काम एक होता है और दस करने वाले साथी-सहयोगी हो जाते हैं यह वे नहीं चाहते थे। अंत तक उन्होंने अकेले ही काम किया, कोई दूसरा साथ में नहीं लिया। कई बार स्वयं ही फोटोकॉपी कराने जाते थे क्योंकि काम भी बढ़िया होना चाहिए और जहाँ 50 पैसे लगते हैं वहाँ 40 पैसे में काम होना चाहिए। कहते थे, यज्ञ में हम धन से सेवा नहीं कर रहे पर यह जो बचत कर रहे हैं, यह भी धन की ही सेवा है। इसलिए हम लोगों को तन, मन, धन तीनों तरीकों से सेवा करनी चाहिए। हमें भी सिखाते थे, हर बात में बचत का ख्याल रखो, कपड़ा अगर फट रहा है तो ऐसे नहीं कि फटता ही चला जाये, उसको संभाल लो पर अपने पास कपड़ों का ढेर भी ना लगा लो। चीज़ उतनी ही होनी चाहिए जितनी से काम चल जाए। उनको यह होता था कि मेरे पास जो काम करने आए, उसे यह ना हो कि अब तो मेरा खाने का समय हो गया, अब मेरा सोने का समय हो गया। जिसका सोने का, खाने का टाइम निश्चित है, वह मेरे पास काम नहीं कर सकता। मुझे ऐसा व्यक्ति चाहिए जिसे भूख और नींद ध्यान में ना आए। जब काम है तब काम। मान लीजिए, कोई उनके पास सेवारत है, खाने गया और खाने का आनन्द ले रहा है तो कहते थे, यह मेरे योग्य नहीं है क्योंकि इसमें त्याग नहीं है। काम की सफलता तब होगी जब त्याग और तपस्या होगी। मानो, कोई सोया हुआ है और उसको कहा, उठो, जल्दी से एक सेवा में जाना है और वो कह देता है, आधे घंटे बाद उठूँगा तो भाई साहब कह देते थे, यह सेवा नहीं करेगा। जिसको बाबा की सेवा की लगन है, वह यह नहीं देखेगा कि यह मेरा नींद का टाइम है। कई बार हम कहते थे, आप बहुत सख्त कार्य देते हो, तो कहते थे, मैं कहाँ कार्य दे रहा हूँ, आप उसे अपने काम में लगा लो। मुझे अपने काम में वो आदमी चाहिए जो वैसे ही चले, जैसे मैं चाहता हूँ। कई बार, कई आजकल की बुद्धि वाले ऐसा भी कह देते कि कल कर लेंगे, आज क्या पड़ी है तो कहते थे, यह अपनी बुद्धि चलाता है, इसको यह भी नहीं मालूम कि कल क्या होगा और कल कौन-सा काम करना होगा, कल के लिए मेरी कोई और योजना हो तो। यह बुद्धिवान सोचता है कि मेरी बुद्धि भी काम करे पर इस प्रकार बुद्धियों में टकराव आ जाता है।

शारीरिक नुकसान से रहे अनभिज्ञ

बाबा ने संदेश में कहा कि उन्होंने शरीर का ध्यान नहीं रखा। वास्तव में, डॉक्टर लोग यह तो कहते थे कि आपको रेस्ट करना चाहिए पर यह नहीं बताते थे कि रेस्ट नहीं करेंगे तो इससे स्वास्थ्य में क्या-क्या नुकसान होगा। भाई साहब यह भी कह रहे थे कि शारीरिक मेहनत से लीवर को क्या नुकसान होगा, डॉक्टर्स ने मुझे एक बार भी नहीं बताया। सिर्फ कह देते थे कि आपको ज्यादा श्रम नहीं करना है।

बहनों को हर बात में मान

हमें सहयोग पूरा देते थे पर जहाँ ऑफिशियल रहना होता था वहाँ पूरे ऑफिशियल थे। ऐसे

नहीं कि उनका कोई कागज़ हम पढ़ लें। कई बार समाचार सुनाने हम उनके कमरे में चले भी जाते थे। यदि कोई समाचार नहीं सुनाते थे तो यह भी कह देते थे, आप लोगों ने मुझे कुछ नहीं सुनाया। कहीं भी जाते थे, कुछ भी मिलता था, सब लाकर हम निमित्त के सुपुर्द कर देते थे। हम कहते थे, आप भी बड़े हैं, आप रखिए, पर कहते थे, नहीं। कोई लिफाफा पकड़ाता था तो भी कहते थे, बहन जी को दीजिए। इस प्रकार, हर बात में मान देते थे।

तीक्ष्ण बुद्धि

कोई मिलने आता था, उसका सम्मान दिल से करते थे पर बिना बताए, बिना समय लिए आता था तो भाई साहब को वो अच्छा नहीं लगता था। कहते थे, कार्य के बीच में विघ्न पड़ता है और लिंक टूट जाता है। उनकी बुद्धि बहुत तीक्ष्ण थी। भाषण लिखवाते समय यदि फोन आ गया तो दस मिनट फोन पर बात करके पुन जब भाषण लिखवाते थे तो जहाँ से छोड़ा था, वहीं से आगे चालू कर देते थे। यह नहीं पूछते थे कि पहले क्या लिखवाया था, बताओ।

भोजन बाबा की याद में

खाना खाते समय, कोई उनके पास आकर बैठे, उन्हें अच्छा नहीं लगता था। कहते थे, खाना बाबा की याद में रुचि से खाया जाए। कोई बात करता है तो खाने का वो आनन्द नहीं आता। इसलिए हम कोशिश करते थे कि खाना खाएँ तो पर्दा कर दें, कोई अंदर ना जाए। इस संबंध में दादी जानकी जी भी सुनाती हैं कि मैं खिचड़ी के साथ आलू की सब्जी बनाती थी, जगदीश भाई को परोसती थी और देखती थी कि बहुत ही बाबा की याद में स्थित होकर खाना खाते थे। मैं भी भोजन बहुत ही बाबा की याद में बनाती थी।

कन्याओं को आगे बढ़ाने की कला

भाई साहब से कोई कन्या डरती नहीं थी। कन्याओं को यह निश्चय था कि दीदी हमारी बात यदि ना भी सुने तो भाई साहब जरूर सुनेंगे। मुझे यह निश्चय होता था, भाई साहब उनके दिल की बात सुन लेंगे और मेरे लिए भी कोई अप्रिय बात नहीं कहेंगे बल्कि समाधान ही करेंगे इसलिए मैं किसी भी कन्या को उनसे बात करने में कभी रोकती नहीं थी। भाई साहब सबसे प्रश्न पूछते थे, वाणी पढ़कर सुनाने को कहते थे, कोई बहन संकोच करती थी तो बहुत महिमा करके उसे प्रोत्साहित करते थे। सेवाकेन्द्र की ड्यूटी या बहनों को चलाने में उनका कोई हस्तक्षेप नहीं था। यदि किसी बात में उनके सहयोग की आवश्यकता होती थी तो वो पूरा देते थे।

हम 15 बहनें इकट्ठी रहती थी, मान लो, कोई बात हुई, किसी कारण से कोई थोड़ी नाराज हुई तो मैं कहती थी, रहने दो नाराज, थोड़ी देर में आपे ठीक हो जायेगी। लेकिन भाई साहब

को पता पड़ जाता था तो जरूर आते थे। किसी को पता नहीं पड़ने देते थे पर बातों-बातों में पूछते थे, आज वो कहाँ गई। हम कहते थे, लेटी है थोड़ी। फिर उसको कहते थे, उठो, सोने का समय नहीं है, नाश्ता किया या नहीं। हम कहते थे, नाश्ता नहीं किया। तो कहते, अरे, प्रभु प्रसाद, भाग्य से प्राप्त प्रसाद, खाया नहीं, फिर किसी से नाश्ता मंगवाते। गिट्टियाँ तोड़-तोड़ थाली में रखते। मैं कहती, आप बिगाड़ रहे हो, नहीं खाया तो छोड़ दो, हमने कुछ कहा नहीं। फिर कहते थे, आओ, बहनजी खिलाओ, एक गिट्टी खिलाओ। उनको यह भाव होता था कि संगम का समय बड़ा कीमती है, इसका यूँ ही न चला जाये इसलिए स्नेह से उसके मन को ठीक कर देते थे। वे चाहते थे कि सभी बहनों को एक-एक सेन्टर की जिम्मेवारी मिल जाए क्योंकि अब ये बड़ी हो गई हैं।

तबीयत खराब होते भी मकान देखने जाते थे। कहते थे, मीटिंग में केवल इंचार्ज बहनें आती हैं। इनको आठ-आठ, दस-दस साल सेन्टर पर रहते हो गए पर इंचार्ज नहीं बनी हैं तो मीटिंग का चांस नहीं मिलता इसलिए सेन्टर संभालेंगी तो बहुत कुछ सीखेंगी। हम बहनें आपस में प्यार से मिलकर बैठती थीं तो उन्हें बड़ी खुशी होती थी।

सुव्यवस्था पसंद

उन्हें हर चीज़ एक्यूरेट पसंद आती थी। कोई चीज अव्यवस्थित नहीं होनी चाहिए। यदि कोई मिलने वाला साढ़े पाँच बजे आने वाला होता था तो उन्हें होता था, सवा पाँच बजे सब बत्तियाँ जल जाएँ, अगरबत्ती जल जाए और सब व्यवस्था ठीक हो। बाबा के घर में जो आए, उसे लगे कि मेरा सम्मान हुआ। कोई साढ़े पाँच बजे कहकर पाँच बजे आ जाए, वो भी उन्हें पसंद नहीं था। यदि कोई भाई साहब से ही स्पेशल मिलने वाला होता था और मानो साढ़े पाँच बजे का समय दिया तो वे तैयार होकर 5.25 पर नीचे आके बैठ जाते थे। अपने सारे काम रोककर, वे उसके लिए टोली-पानी का पूरा प्रबंध करके बैठते थे। इस प्रकार समय के बड़े पाबंद थे। फिर कोई लेट आता था तो उन्हें अच्छा नहीं लगता था।

सिम्पल और सैम्पल

भाई साहब के कमरे में आखिर के दिनों में हमने एक सोफा रख दिया, उनको तो वो भी अच्छा नहीं लगा। हम कहते थे, कोई आयेगा, पूछेगा, भाई साहब कहाँ रहते हैं, तो क्या दिखायेंगे? एक बार पतला-सा कारपेट बिछा दिया तो कहा, उठाओ। हमने कहा, नहीं उठायेंगे। इतनी गर्मी में भी बिना ए.सी. के रहे। जब हमने ए.सी. लगवाया तो कहा, पहले बहनों के कमरे में लगेगा, तब फिर लगवाऊँगा। वो कहते थे, मुझे इतनी सुविधायें नहीं चाहिएँ। उनका सूत्र था, अपने पर खर्च कम से कम हो, सेवा ज्यादा से ज्यादा हो।

बीमारी में भी झेली कठिनाइयाँ

जब उन्हें पहली उल्टी आई तो हॉस्पिटल लेकर गए। वहाँ प्राइवेट रूम मिलना संभव नहीं था। उनको जनरल वार्ड में रखा गया। पर लेट्रिन, बाथरूम गंदे थे तो रात को घर आ गये। डॉक्टर ने कहा था, पूर्ण रेस्ट करना है पर वहाँ रेस्ट कैसे करें, बाथरूम आदि की सुविधायें थी नहीं। जब सेवाकेन्द्र पर आए तो हमने कहा, नीचे ही रेस्ट कर लीजिए। ऊपर मत चढ़िए। हम आपके लिए एक ही दिन में, नीचे ही सब सुविधायें निर्मित कर देंगे परंतु नहीं, तीसरी मंजिल पर अपने निश्चित स्थान पर जाकर ही रहे। फिर हॉस्पिटल गए। दो दिन ऐसे आना-जाना करते रहे। दो दिन बाद प्राइवेट रूम मिला। पर दो दिन में भी तकलीफ तो बहुत उठाई ना।

बाबा को पहचाना नहीं

जब वे ग्लोबल हॉस्पिटल में थे तो एक दिन हम सब उनके पास बैठे थे। गुलजार दादी बाद में आई थी। कहने लगे, सबने बाबा को पहचाना नहीं। हमने कहा, भाई साहब, आपने इतना लिखा है, सब पढ़ेंगे तो पहचान लेंगे। गुलजार दादी आई तो उनको भाई साहब की बात बताई। दादी ने कहा, जगदीश जी, आपने तो पहचाना ना, तो कहा, नहीं, मैंने भी कम पहचाना, जितना पहचानना था उतना नहीं पहचाना। उस बाप को जिसने हमें इतना प्रत्यक्ष किया, उसके लिए हमें क्या नहीं करना चाहिए, यह उनके अंदर बहुत भावना रहती थी। जब भी क्लास कराते थे तो यही कहते थे कि हमने तो अपना सब कुछ समेट लिया, अब आप ऐसा करना। वे कहते थे, जीवन हमारा त्यागी तपस्वी हो, ईश्वर का ज्ञान हमारे जीवन से टपके। हम केवल सेवा ही ना करें बल्कि स्वयं सेवा का स्वरूप भी बनें।

72 वर्ष में 100 वर्ष जितनी सेवा

जब हॉस्पिटल में आये तो अपनी पूर्ण हुई किताबों को अपने साथ ले आये थे और उन्हें जल्दी से छापने का आदेश भी दे दिया था। छपाई बहुत सुंदर ढंग से हो, इस पर भी उनका विशेष ध्यान रहता था। इसलिए निमित्त आत्म भाई को भी उन्होंने कहा था कि इकट्ठा कागज़ खरीदना ताकि किताब में एक ही प्रकार का कागज़ लगे, दो प्रकार का लगने से उसकी शोभा कम हो जाती है। कई बार कहते थे, बाबा तो बहुत साहूकार है पर मैं उनका गरीब बच्चा हूँ, अगर मेरे हाथ में पाँच-सात लाख रुपये होते तो मैं बढ़िया से बढ़िया किताबें छपवाता। भाई साहब कहते थे कि मेरी आयु अगर 72 वर्ष है तो मैंने 100 वर्ष की आयु जितना काम किया है।

अंतिम श्वास तक प्रत्यक्षता की योजना

सोनीपत की जमीन पर बाबा की प्रत्यक्षता के निमित्त कुछ विशेष बने, जगदीश भाई को इसकी बहुत लगन थी। बीमारी के दौरान भी उस जमीन के बारे में उनके मन में निरंतर योजनायें

चलती रहती थी। उन्हें महसूस होता था कि मेरे पास समय कम है लेकिन इस कम समय में भी मैं बाबा के लिए कुछ विशेष करके जाऊँ। उनकी भावना थी कि कोई ऐसी चीज बननी चाहिए, जो भी देखे, उसे लगे, सत्यता हो तो ऐसी हो। दुनिया में भी Planetarium होता है जहाँ बैठे-बैठे तारामण्डल और रात देखने में आ जाती है, इसी प्रकार, ऐसी कोई चीज़ बने जिसमें साकार वतन में बैठे-बैठे सूक्ष्म वतन दिखाई दे। सूक्ष्म वतन का पूरा दृश्य इस रूप से सामने आ जाए जो सबको सूक्ष्म वतन का अनुभव हो जाये। सूक्ष्म वतन की लाइट की भी अनुभूति हो, फिर इस अनुभव से भी ऊपर उठकर, निराकारी दुनिया, एकदम सोल वर्ल्ड में पहुँच जाएँ, वहाँ का अनुभव हो। अमेरिका जैसा डिज्नी लैण्ड बने। दिल्ली में एयरपोर्ट के पास भी कई जगहें देखते रहे। फिर जब सोनीपत की जगह मिली तो कहा, मुझे इसके लिए कुछ प्लैन करने दो तो दादियों ने भी स्वीकृति दे दी। हमने कहा, आप इतनी जिम्मेवारी ले रहे हो, शरीर चल नहीं रहा है, तो कहा, मेरी फोल्डिंग खटिया और रजाई ले चलना, मैं सोनीपत की जमीन पर ही मीटिंग करूँगा। हमने कहा, आप भाई-बहनों को यहीं बुला लीजिए तो कहा, उसी स्थान पर मीटिंग करें तो आइडिया दिया जा सकता है। यह अलग बात है कि वो वहाँ जा नहीं सके पर बाबा की प्रत्यक्षता की लगन बहुत थी। वे चाहते थे कि ऐसा स्थान बने जो बहुत देखने वाले वहाँ आयें। कई आर्किटेक्टस से भिन्न-भिन्न नक्शों का निर्माण भी करवाया, कहते थे, वैसे तो मेरी आयु पूरी हो गई है, अगर बाबा इस सेवा का मौका देगा तो वो मेरे लिए ग्रेस में बाबा द्वारा दिये गये वर्ष होंगे।

अधूरे कार्य पूरे करने की लगन

ग्लोबल हॉस्पिटल में जब आई.सी.यू. में थे तो मैं रात को बारह बजे सोने के लिए चली गई और फिर एक बजे उन्हें देखने के लिए पुन आई क्योंकि हालत तो नाजुक ही थी। देखकर आश्चर्यचकित हुई कि क्लीनर सुनील भाई तख्ती पर कागज़ लगाये बैठा है और भाई साहब कुछ लिखवा रहे हैं। मैंने पूछा, सुनील क्या कर रहे हो? तो कहा, भाई साहब ने कहा है, अगर थोड़ा भी लिखना जानता है तो लिख। मैंने फिर पूछा, भाई साहब, क्या लिखवा रहे हो? जगदीश भाई ने कहा, 'योगबल से सन्तान कैसे होगी' यह मेरी किताब अधूरी है, इसे पूरा करना है। उन्हें अपने अधूरे कार्य पूरे करने की अंतिम श्वास तक बड़ी लगन रही।

भ्राता जगदीश जी के साथ के अपने अनुभव ब्र.कु. रमेश भाई जी इस प्रकार बताते हैं-

हम सबके अति प्रिय भ्राता जगदीश जी बहुत ही अनुभवी, शास्त्रों एवं विविध धर्मग्रंथों के समर्थ विद्वान एवं ईश्वरीय ज्ञान के विविध तथ्यों की गहराई को जानने वाले थे। उनको समाज की विभिन्न व्यवस्थाओं और कारोबार का भी गहन अनुभव था। उनकी लेखनी ज्ञान के गूढ़ रहस्यों से युक्त और ज्ञान के गहन राजों को प्रत्यक्ष करने वाली थी।

प्रेमपूर्वक व्यवहार

मैं जब सन् 1952 में इस ईश्वरीय ज्ञान के संपर्क में आया तब से ही जगदीश भाई का नाम सुना। सन् 1957 में प्यारे ब्रह्मा बाबा ने उनको मुंबई आने का निमंत्रण दिया। वे मुम्बई में आये और आते ही लौकिक गीता ज्ञान यज्ञ करने वालों की ईश्वरीय सेवा के कार्य में जुट गये। मैं उनकी लगन को देख रहा था। उन्होंने शास्त्र जानने वालों की सेवा में मुझे जुटा दिया और धर्मनेताओं की सेवा कैसे की जाये, वह भी मुझको सिखाया। जब मैंने उनसे पूछा कि आप मेरे साथ ऐसा प्रेमपूर्वक व्यवहार क्यों कर रहे हैं, तब उन्होंने बताया कि प्यारे ब्रह्मा बाबा ने आपके लिए मुझे कहा है कि ज्ञान-चर्चा करके उसे भी इस ईश्वरीय सेवा में लगा दो क्योंकि आगे चल कर उसका इस ईश्वरीय सेवा में बहुत बड़ा पार्ट है। इस प्रकार बापदादा के द्वारा, मेरे लिए दिये गये वरदान की जानकारी, भ्राता जगदीश जी के द्वारा मुझको मिली, इसलिए मैं उनका बहुत ही आभारी हूँ। उन्होंने मुझको ईश्वरीय सेवा में आगे लाने का पुरुषार्थ किया और अन्त तक मेरे साथ बड़े भाई का संबंध निभाया। मैं उनको सदा ही कहता था कि भले ही ज्ञान के हिसाब से राम-लक्ष्मण का संबंध त्रेतायुगी है किन्तु फिर भी मुझे लक्ष्मण के रूप में आपकी सेवा करने और साथ निभाने का सदा ही गौरव अनुभव होता है।

सर्वव्यापी के ज्ञान की वास्तविकता

सन् 1961 में मैंने और ऊषा ने शिव बाबा और ब्रह्मा बाबा को अपने पारलौकिक और अलौकिक पिता के रूप में अपनाया किन्तु ऊषा को सर्वव्यापी के सिद्धांत के विषय में लौकिक मान्यता थी। सन् 1961 में जब हम देहली गये तब जगदीश भाई ने विशेष समय निकाल कर सर्वव्यापी के ज्ञान की वास्तविकता समझाई, तब ऊषा ने इस ईश्वरीय ज्ञान में शत-प्रतिशत निश्चयात्मक बुद्धि बन कर आगे बढ़ने का दृढ़ संकल्प किया। इस प्रकार ब्र.कु. ऊषा भी उनकी आभारी हैं।

प्रदर्शनी की सेवा में योगदान

सन् 1964 में मुम्बई में पहली प्रदर्शनी का आयोजन हुआ तब जगदीश भाई भी ईश्वरीय सेवा

में सहयोग करने आये। दिसंबर 29, सन् 1964 के दिन शाम को प्यारी मम्मा ने हम सभी को बिठा कर प्रदर्शनी की उपयोगिता बताई। उस समय के हृदय से निकले हुए उद्‌गार अभी भी मुझको याद हैं। जगदीश भाई ने मातेश्वरी जी को कहा अब तक मैं नहीं समझ सकता था कि बाबा जो मुरली में कहते हैं कि एक दिन आबू रोड से आबू पर्वत तक लंबी लाइन लगेगी किन्तु इस प्रदर्शनी को देखने के लिए जो लंबी लाइन लगती है, उससे मुझे विश्वास हो गया कि अवश्य ही आगे चलकर ऐसा होगा। फिर उन्होंने प्रदर्शनी की सेवा कैसे आगे बढ़े और देहली में भी प्रदर्शनी की जाये, इस पर अपने विचार प्रकट किये। उस समय प्रदर्शनी में गीता के भगवान के विषय में तीन चित्र थे। जगदीश भाई ने, इन चित्रों पर क्या और कैसे समझाया जाये, यह भी स्पष्ट किया। जगदीश भाई ने जो ढंग सिखाया, उससे सबको यथार्थ रूप में गीता का भगवान कौन है, यह बताना आसान हो गया।

पोप की सेवा

बाद में मुझे जगदीश भाई के साथ अनेक प्रकार की ईश्वरीय सेवा करने का अवसर मिला। मुम्बई में ईसाई धर्म की इक्राइस्ट कांफ्रेंस (Euchrist Conference) हुई तो ईसाई धर्म के धर्मगुरु पोप, पहली बार भारत में आये। उस कांफ्रेंस में ईसाई धर्म के बड़े-बड़े आर्च बिशप आदि की सेवा करने की योजना भी उन्होंने बनाई और 30"X 40" आकार के छपे हुए झाड़-त्रिमूर्ति-सृष्टि चक्र के चित्रों को कास्केट में रखकर पोप को उपहार दिया, जो चित्र आज भी रोम के वेटीकन म्यूजियम में लगे हुए हैं।

ईश्वरीय सेवार्थ पहली विदेश यात्रा

बाद में राजयोग की प्रदर्शनी मुम्बई में हुई और उसके बाद देहली में हुई। देहली में आयोजित उस प्रदर्शनी में, अमेरिका में होने वाली एवास्टिंग रिट्रीट (evosting retreat) में जो कांफ्रेंस होने वाली थी, उसका निमंत्रण मिला और उस निमंत्रण के आधार पर विदेश सेवा का शुभारंभ हुआ। विदेश सेवा के लिए जाने वाले ग्रुप में जिन छह डेलीगेट्स के नामों का चयन बापदादा ने किया, उनमें चार बहनों और दो भाइयों का अर्थात् मेरा और जगदीश भाई का नाम बापदादा ने लिया। जाने के दिन देहली से जगदीश भाई हवाई जहाज से मुम्बई आये और जगदीश भाई ने मुझे बताया कि पहली बार उन्होंने हवाई जहाज से यात्रा की है। उसी रात को हम सभी विदेश यात्रा को निकले। हवाई जहाज, बीच में ग्रीस की राजधानी एथेन्स में रुका और तब हम दोनों ने पहली बार विदेश की धरती पर कदम रखे और एक घंटे तक ग्रीक तत्वज्ञान (philosophy) के विषय में चर्चा की। फिर हम लंदन पहुँचे और अपनी दैवी बहन जयन्ती के घर पर रहे। अंग्रेजी में प्रवचन करने का हम दोनों को ही अभ्यास था इसलिए इंग्लैण्ड में सभी स्थानों पर हम दोनों ने मिलजुल कर ईश्वरीय सेवा का कारोबार किया।

विदेश में पहला सेवाकेन्द्र

जगदीश भाई के मन में दृढ़ संकल्प था कि हमारी इस विदेश यात्रा का कुछ फल अवश्य निकलना चाहिए। हम लोगों को अवश्य ही पूर्व और पश्चिम में कम-से-कम एक-एक स्थान पर, ईश्वरीय सेवाकेन्द्र की स्थापना करके ही जाना चाहिए। उन्होंने इसी कारण मधुबन में फोन किया और लंदन और हांगकांग में सेवाकेन्द्र की स्थापना की स्वीकृति माँगी। उनके इस दृढ़ संकल्प के कारण लंदन में 23 सितंबर, 1971 में पहले-पहले राजयोग सेवाकेन्द्र की स्थापना हुई। उनकी यह एक विशेषता थी कि वे जो भी सेवा करते थे, उसको कार्यान्वित करने और सफल बनाने का बहुत दिल से पुरुषार्थ करते थे।

स्थूल सेवा

न्यूयार्क में जब हम रहते थे तब हम दोनों का स्थूल सेवा का भी विशेष पार्ट था। मेरी बर्तन साफ करने और कपड़े धुलाई की ड्यूटी थी और जगदीश भाई को रहने के स्थान की सफाई आदि की सेवा मिली। अपनी-अपनी सेवा को करते हुए हम लोग हँसी में गीत गाते थे 'किसी ने अपना बनाके हमको बर्तन साफ करना सिखा दिया और किसी ने अपना बनाके हमको झाड़ू लगाना सिखा दिया।' जिनके घर में हम रहते थे, वे भाई एक दिन हमारे पास आये और उन्होंने जगदीश भाई को झाड़ू लगाते देखा। तब उन्होंने कहा कि आप भारत में ऐसे झाड़ू लगाते हो तो कमर टेढ़ी होती है परन्तु हमारे पास होवर (Hoover) मशीन से झाड़ू लगाया जाता है और उनके घर में जो होवर मशीन थी, उससे सफाई करना सिखाया। उस पर जगदीश भाई ने मुझको कहा कि अब हमारी कमर सीधी रहेगी और मैं अधिक सेवा कर सकूँगा। तब मैं उनको कहता था कि आप ज्ञान-योग की झाड़ू से सबके अंदर से माया का किचड़ा साफ कर ही रहे हैं।

हंसते-हंसते सेवा

विदेश यात्रा में हम सभी जगदीश भाई के साथ नाश्ता, भोजन करते थे। उनका नियम था कि वे तीन रोटी ही खाते थे परन्तु खाते समय ईश्वरीय सेवा के विषय में चर्चा करने में इतने मगन हो जाते थे कि वे भूल जाते थे कि उन्होंने कितनी रोटियाँ खाई हैं और बहनें उनको झूठी गिनती बताकर अधिक रोटियाँ खिला देती थीं। उस समय जगदीश भाई कहते थे कि बहनें उनके साथ रोटियों की गिनती में ठगी करती हैं परन्तु बड़े प्रेम से सबके साथ भोजन करते थे। जगदीश भाई हमको यह भी कहते थे कि जब मैं वापस जाऊँगा तब कमलानगर में सब मुझसे पूछेंगे कि आपने क्या किया? तो कुछ नवीनता करके दिखाई जाये और खुद पर हँसते थे कि मैं विग (Wig) पहन कर जाऊँगा और सबको बताऊँगा कि विदेश सेवा के कारण मेरे सिर पर चमत्कारिक रूप से बाल उग आये हैं। इस प्रकार हँसते-हँसते सेवा करते थे।

निर्भयता से ज्ञान-दान

हांगकांग में जब ईश्वरीय सेवायें प्रारंभ की, तब मैंने जगदीश भाई को कहा कि मुझे तो लौकिक कार्य अर्थ जल्दी भारत में जाना होगा। तो जगदीश भाई ने सहर्ष हमको छुट्टी दे दी और सारा कार्यभार स्वयं ही संभाल लिया। हांगकांग में प्रदर्शनी आदि करने के बाद जगदीश भाई सिंगापुर, वियतनाम आदि देशों में ईश्वरीय सेवा करने गये। इस प्रकार उन्होंने लगभग 12 मास तक दिल व जान से विदेश में ईश्वरीय सेवा की। उनके अंग-संग रहकर सेवा करने का जो सौभाग्य मिला, उससे मुझको बहुत-सी बातें सीखने को मिली, जो हमको ईश्वरीय सेवा में बहुत मददगार हैं। उनका एक लक्ष्य था कि जो भी प्रदर्शनी देखने आये, उसे ईश्वरीय ज्ञान के सभी पहलुओं का ज्ञान, सार रूप में अवश्य समझाना चाहिए। इसलिए वे पवित्रता, सत्यता, सर्वव्यापी, ड्रामा की पुनरावृत्ति के ज्ञान को निर्भय होकर सबको बताते थे।

लेखनी बाबा की मुरली जैसी

प्यारे बापदादा ने हमारे डेलीगेशन को एक श्रीमत दी थी कि हम विदेश में देवता अर्थात् देने वाले बन कर जा रहे हैं। इस बात को उन्होंने पूरा ही पालन किया। जगदीश भाई ने कहीं भी किसको भी यह आभास तक नहीं होने दिया कि हम उनसे कुछ लेना चाहते हैं। सदा देने का ही संकल्प रखा। हमारी इस विदेश यात्रा का एक बहुत सुन्दर फल भारत में निकला कि यहाँ एक विशिष्ट भाई ने हमको बताया कि वे जगदीश भाई को यज्ञ का बहुत ही अनुभवी भाई मानते थे और समझते थे कि गुलजार दादी के तन में शिव बाबा आकर मुरली नहीं चलाते हैं बल्कि साकार बाबा के बाद अपने जगदीश भाई मुरली लिखते हैं और गुलजार दादी उसको याद कर मुरली के रूप में सुनाती हैं। जब जगदीश भाई एक साल तक बाहर रहे फिर भी भारत में गुलजार दादी के तन द्वारा बाबा की मुरली चलती ही रही तो उस भाई को निश्चय हुआ कि प्यारे शिव बाबा ही आकर मुरली चलाते हैं। मैं समझता हूँ कि जगदीश भाई की महानता में यह श्रेष्ठ-से-श्रेष्ठ शिष्टाचार *(complement)* है कि उनकी लेखनी इतनी ओजस्वी, ज्ञान की गहराई से संपन्न और योग के अनुभवों से युक्तथी कि वह कुछ भाई-बहनों को शिवबाबा की मुरली के समान अनुभव प्रदान करती थी।

बहनों प्रति बहुत ऊँची भावना

अंतिम दिनों में जब उनका स्वास्थ्य ठीक नहीं था, उस समय मैं मुम्बई से उनसे मिलने आया। मिलते समय मैं उनसे उनके स्वास्थ्य के विषय में पूछता, उससे पहले बड़े भाई के नाते वे मुझसे मेरे स्वास्थ्य के विषय में पूछने लगे। फिर जब मैं यज्ञ के ऑडिट के कारोबार के अर्थ मधुबन में आया तो अनेक बार उनसे हॉस्पिटल में मिला और उन्होंने बड़े भाई के नाते अनेक प्रकार की शिक्षायें दीं। एक विशेष बात उन्होंने मुझसे कही कि मुझे बहनों के हिसाब-किताब

को तुरंत और सहज ही चेक करके बहनों की आशीर्वाद प्राप्त करनी चाहिए। उनकी यह बहुत बड़ी महानता थी कि वे सदा ही बहनों को देवी के स्वरूप में देखते थे और सभी छोटी-बड़ी बहनों का देवी के रूप में आशीर्वाद प्राप्त करने का संकल्प रखते थे। जब उनका स्वास्थ्य बहुत खराब हो रहा था, उसी बीच आदरणीया दादी प्रकाशमणि जी का अफ्रीका की सेवा पर जाने का कार्यक्रम था और उनको 13 मई, 2001 के बाद आना था। तो अव्यक्त बापदादा ने दादी जी को विदेश जाने की मना कर दी। मई 12, 2001 को मैंने ऊषा को सुखधाम में जगदीश भाई की तबीयत को देखने के लिए भेजा। पौने आठ बजे तक वह वहाँ थी, फिर हमको समाचार देने पाण्डव भवन आ रही थी, तभी समाचार आया कि जगदीश भाई ने प्यारे बापदादा की गोद में विश्रान्ति पाई। मेरी यह दृढ़ मान्यता है कि हम दोनों का जैसे ईश्वरीय सेवा में गहरा संबंध रहा वैसे ही सारे कल्प में भी भिन्न नाम-रूप, देश-काल में संबंध रहेगा और मुझे अवश्य ही किसी-न-किसी जन्म में लौकिक में छोटे भाई के रूप में उनकी सेवा करने का अवश्य ही सौभाग्य प्राप्त होगा। अब तो जगदीश भाई ने आगे एडवांस पार्टी में ईश्वरीय सेवा का पार्ट बजाने के लिए हम सबसे विदाई ले ली फिर भी उनके लिखे साहित्य और दी गई मार्गदर्शना के द्वारा, जब तक यज्ञ चलेगा तब तक ईश्वरीय सेवा में उनका सहयोग अमर रहेगा।

इस तरह, इस लेख के द्वारा मैं और ब्र.कु. ऊषा अपने अग्रज जगदीश भाई को अपने श्रद्धासुमन अर्पित कर रहे हैं। उनकी तीव्र इच्छा थी कि सोनीपत में जो जमीन ली है, वह एक स्प्रीच्युअल वण्डरलैण्ड बने, उनकी इस आश को पूर्ण करके, स्थूल रूप में भी सच्ची श्रद्धांजलि अर्पित करने का पुरुषार्थ करूँगा। मैं अपने अग्रज को दिल से वन्दन करता हूँ।

******

ब्र.कु. आत्मप्रकाश, संपादक, ज्ञानामृत, जगदीश भाई जी के साथ के अपने अनुभव इस प्रकार सुनाते हैं

प्यार से गले लगाया

भ्राता जगदीश जी से इस कल्प में मेरा प्रथम मिलन सन् 1957 में हुआ। उस समय मम्मा-बाबा दिल्ली, राजौरी गार्डन में आये हुए थे और मैं भी बाबा से मिलने गया तो वहीं उनसे मुलाकात हुई। उन्होंने बड़े प्यार से गले लगाया और मुझे महसूस हुआ कि जैसे लंबे समय से बिछुड़े अति स्नेही भाई ने मुझे स्नेह दिया है। विद्यालय की पहली हिन्दी पत्रिका 'त्रिमूर्ति' उस समय उनके संपादन में ही निकलती थी। पत्रिका के लेखों की गुह्यता और स्पष्टता से मैं बहुत प्रभावित था। इनके द्वारा लिखी 'सच्ची गीता' और Real Geeta का भी हम अध्ययन कर चुके थे। इन दोनों पुस्तकों ने भी हमें बहुत प्रेरणाएँ प्रदान की थीं। इसलिए मन-ही-मन उनके प्रशंसक तो हम थे ही, फिर उनसे सम्मुख मिले तो हमारी प्रसन्नता और भी बढ़ गई।

त्यागमय जीवन से लाभान्वित

सन् 1962 में प्यारे साकार बाबा ने मुझे साहित्य की सेवा अर्थ इनके पास भेजा। उस समय लगभग दो वर्ष इनके अंग-संग रहकर विभिन्न प्रकार की ईश्वरीय सेवाओं के अनुभव प्राप्त किये और इनके त्यागमय, उच्च धारणाओं वाले जीवन से लाभान्वित भी बहुत हुए।

उच्च योगस्थ स्थिति का अनुभव

किसी भी व्यक्ति के साथ कार्यक्षेत्र में रहकर, उसके जीवन के व्यवहारिक पक्ष में जिन बातों को पल-पल साकार होते हम देखते हैं उनका अमिट प्रभाव हमारे मानस में गहराई से अंकित होता है। भ्राता जगदीश जी के जीवन की ऐसी विशेषताओं की एक लंबी कड़ी है। वे महान ज्ञानी, महान योगी, महान लेखक, महान प्रवक्ता और महान सेवाधारी थे। कहते हैं कि "Writing makes the man perfect" उनकी लेखनी से गहन राज़ उद्‌भूत हुए और उनसे हमने पहली नजर में, अंजान व्यक्तियों को भी परमात्मा पिता की तरफ आकर्षित होते देखा। कई बार तो बड़े-बड़े प्रसिद्ध लोग उनसे मिलते और ईश्वरीय ज्ञान-चर्चा में उनके आत्मिक गुणों से प्रभावित होकर यहाँ तक भी कह देते थे "हम आपमें साक्षात् ईश्वर को ही देख रहे हैं।' हमारा जब भी उनसे मिलना होता तो ज्ञान-चर्चा तो होती ही थी। एक बार उन्होंने कहा कि एकाग्रता किसे कहते हैं? फिर खुद ही स्पष्टीकरण दिया कि किसी भी एक ज्ञान बिन्दु पर निरंतर चिन्तन चलाते रहना ही एकाग्रता है। यदि इस बीच बुद्धि में दूसरी बात आ जाती है तो उसे निकाल दो। वे ये भी कहते थे कि यदि आपको अच्छी अनुभूति हो रही है और बीच में किसी कारण से सफेद लाइट हो जाती है तो आप अपनी अनुभूति की स्थिति के आनन्द में

मगन रहो, नीचे नहीं आओ। उनके पास बैठने से ही उनकी उच्च योगस्थ स्थिति का अनुभव हो जाता था क्योंकि हमारा भी योग लग जाता था। ऐसा नहीं कि कुछ विशेष घड़ियों में ऐसा होता था, हर समय स्वाभाविक ढंग से ही वे आत्म-स्मृति और परमात्म-स्मृति की स्थिति में रहते थे।

तीव्र लगन और उमंग से सेवा

मेरे प्रारंभकाल में जब देहली में अनेक स्थानों की जानकारी अर्थ मुझे साथ लेकर जाते और बताते कि यहाँ छपाई होती है, यहाँ ब्लाक बनते हैं तो बहुत जगह पैदल ही आना-जाना होता था। उस समय वे अपने लंबे-ऊँचे हृष्ट-पुष्ट शरीर से चलते थे और मुझे दौड़ना पड़ता था। हर सेवा तीव्र लगन और उमंग से संपन्न करते हुए इन्होंने ईश्वरीय जीवन के 50 वर्षों में अपना तन, मन, श्वास, संकल्प सब कुछ विश्व-सेवा में अर्पण कर दिया।

दृष्टि से ओझल होते भी मन से ओझल नहीं

संसार रंगमंच पर आने वाले हर पार्टधारी को शरीर तो छोड़ना पड़ता है, यह अटल सत्य है, परंतु शरीर छोड़कर भी महामानव अपनी कर्मठता, सच्चाई, कर्त्तव्यपरायणता, दूरदृष्टि, निर्भयता, अडोलता, सर्व के प्रति सच्चे रूहानी स्नेह, पवित्रता, विशाल हृदयता, त्याग, अपनत्व इत्यादि गुणों की अपनी सूक्ष्म तस्वीर को रंगमंच पर छोड़ जाता है। वह सदा-सदा के लिए सर्व के लिए प्रेरणा स्त्रोत बना रहता है। दृष्टि से ओझल होने पर भी मन से ओझल नहीं होता है। छोटे अस्तित्व के लुप्त होने पर उसके गुण और विशेषताओं का विशाल अस्तित्व, उदधि की तरह ठांठे मारकर बार-बार मन रूपी किनारे को छू लेता है।

सादगी और मितव्ययता के अवतार

ईश्वरीय विश्व विद्यालय में बेगरी पार्ट में समर्पित होने वाले प्रथम समर्पित ब्रह्माकुमार जगदीश भ्राता जी का जीवन सादगी और मितव्ययता का मानो अवतार था। उनकी सदा यही इच्छा रहती थी कि जो भी कार्य किया जाये, वह बढ़िया से बढ़िया और सस्ते से सस्ता भी हो। वे समय के बहुत ही पाबंद थे। जब कोई कार्य पूर्ण करके उनके सामने जाते थे तो उनकी पारखी दृष्टि उसमें रही हुई खामी को तुरंत पकड़ लेती थी। वे हर कार्य में परफेक्शन चाहते थे। उनकी इस चाहना को पूर्ण करने के लिए अथक प्रयास करने पर भी, कई बार आरंभ काल में मुझे सफलता न भी मिलती रही हो परंतु उनके मार्गदर्शन में किये गये पिछले कई वर्षों के मेरे कार्य से वे बहुत प्रसन्न थे। उन्हें आभास हो गया था कि वे अब बहुत दिनों तक इस तन में नहीं रहेंगे। मैं भी उनकी इस आंतरिक भावना को समझ गया था। मैं अन्य सब कार्यों से पहले उनके द्वारा निर्देशित कार्य को संपन्न करता था। शरीर छोड़ने से लगभग एक मास पूर्व जब मैं उन्हें सुखधाम (मधुबन) में मिलने गया और भिन्न-भिन्न प्रकार की छपी हुई पुस्तकें दीं तथा मैंने कहा कि भाई साहब, हम तो भरत मुआफिक आपके कार्य को सरअंजाम

दे रहे हैं। उन्होंने बड़े प्यार से कहा, 'आत्म, मुझे खुशी है कि तुम भी काफी अनुभवी हो गये हो, ज्ञानामृत की संख्या भी काफी बढ़ गई है और इसका स्तर भी काफी अच्छा हो गया है..पुस्तकें भी ठीक छप रही हैं..।' इस प्रकार उनकी संतुष्टता से प्राप्त दुआओं से मैं गद्‌गद हो गया।

अन्त तक सेवारत

शरीर छोड़ने से एक सप्ताह पूर्व उन्होंने पूछा कि 'कार्टून और कहावतें' यह पुस्तक कहाँ तक छपी है? मैंने कहा कि अभी छपना जारी है। 'जल्दी करो' ऐसा आदेश मिलते ही मैंने उसे जल्दी तैयार करवा कर तीन दिन बाद ही उनके सामने पेश किया और उनके मुख से निकला, 'चलो, यह कार्य भी पूरा हुआ' और मुझे धन्यवाद दिया। इस प्रकार अंत तक वे सेवारत रहे। वे पुस्तकों, लेखों, अनुभवों के रूप में इतना ज्ञान खज़ाना हमें प्रदान करके गये हैं कि आगे के समय में हम उनसे लाभान्वित होते रहेंगे। उनके द्वारा निर्मित ईश्वरीय संविधान, उनका स्वयं का नष्टोमोहा स्मृतिलब्धा स्वरूप, ईश्वरीय नियम, धारणाओं में वज्र के समान अडोल जीवन हमें सदा प्रेरित करता रहेगा। अंतिम श्वास तक उनको स्वयं से एक ही गिला रहा कि हम शिव बाबा को संपूर्ण जगत में प्रत्यक्ष नहीं कर पाये। सच्चे स्नेही के रूप में अब हम उनकी प्रत्यक्षता की इस शुभ आश की पूर्णता का दृढ़ संकल्प करें और उसमें जी-जान से जुट जाएँ।

******

दिल्ली, हस्तसाल से भावना बहन जगदीश भाई के साथ का अनुभव इस प्रकार सुनाती हैं-

हर बात की योजना

कोई भी कार्यक्रम होता तो भाई जी छोटी से छोटी बात का भी ध्यान रखते, कार की पार्किंग कहाँ करनी है, जूते-चप्पल कहाँ निकाले जायेंगे, स्टेज कहाँ पर बनेगी आदि-आदि। हर बात की पहले से ही पूरी प्लानिंग करते थे। प्रोग्राम की पूरी व्यवस्था कैसे करनी है, यह हमने भाई जी से सीखा। प्रोग्राम के बाद, एक-एक व्यक्ति द्वारा की गई सेवा की महिमा करते, इस प्रकार उन्हें आगे बढ़ाते।

ज्ञान की गहराई

जब वे ज्ञान सुनाते तो हम सोचते कि भाई जी का दिमाग है या कंप्यूटर? कभी सामने से आते दिखाई देते तो हम संकोच वश हल्का-सा मुसकराते लेकिन भाई जी फिर खुद ही ओमशान्ति

बोलते और हाल-चाल पूछते। रोज रात को ब्राह्मणों की क्लास कराते, रिफ्रेश करते, हँसाते-बहलाते, ज्ञान की गहराई में ले जाते। जिसकी जो विशेषता होती, उसकी महिमा करते। एक बार मुझसे पूछा, आपको कौन-सी टोली अच्छे से बनानी आती है? मैंने बताया तो कहा कि यह बनाओ फिर हम गुलजार दादी के पास ले जायेंगे।

देने की भावना

सेन्टर पर कोई नया फल आता तो कहते, पहले सबको दो फिर जो बचता वो लेते थे। किसी बहन-भाई को कोई समस्या होती या कुछ पूछना होता तो वे समय लेकर भाई जी से मिलते और फिर बताते कि हमें जो चाहिए था, भाई जी से वो मिल गया। भाई जी के लिए जब नई गाड़ी आई तो बोले, क्लास में जिन भाई-बहनों के पास गाड़ी नहीं है, पहले उन्हें गाड़ी से छुड़वाओ, फिर मैं गाड़ी में बैठूँगा। इस प्रकार उनके हर कर्म में एक प्रेरणा, एक मार्गदर्शन और सर्व को देने की भावना रहती थी।